यजुर्वेद संहिता

यजुर्वेद में यजुषों का संग्रह है जो यज्ञ में अध्वर्यु के लिए नितान्त उपयोगी थे। यजुर्वेद का लगभग चतुर्थांश ऋग्वेद पर आधृत है अथवा ऋग्वेद से ग्रहण किया गया है तथा शेष अंश मौलिक है। ऋग्वेद से भिन्न अंश अधिकांशतः गद्यात्मक है। ऋग्वेद के सूक्त सम्पूर्णतः तो बहुत कम ही यजुर्वेद में उद्धृत हैं। वस्तुतः ऐसा जान पड़ता है कि ऋग्वेद की जो ऋचाएँ किसी यज्ञीय अनुष्ठान के उपयुक्त प्रतीत हुई, उन्हें ऋग्वेद में संकलित कर लिया गया। इन ऋचाओं का यजुर्वेद में उपलब्ध प्रसङ्ग ऋग्वेद से भिन्न है। इसी लिए ऋचा के यज्ञ में उपयोगी अंश मात्र को ग्रहण करके उनपर गद्यात्मक अंश लिखा गया। यही गद्य भाग "यजुष्" है जिसके आधार पर इस वेद का नामकरण हुआ। 'यजुष्' शब्द की अनेक व्याख्याँ प्राप्त होती हैं-

1) इज्यतेऽनेनेति यजुः — अर्थात् जिन मन्त्रों से यज्ञ यागादि सम्पन्न किए जाएँ।
2) यजुर्यजते! — यज्ञ सम्बन्धी मंत्रो को यजुष् कहते हैं।
3) गद्यात्मको यजुः — यजुष् गद्यात्मक होते हैं।
4) अनियताक्षरावसानो यजुः — यजुष् वह हैं जिनमें अक्षरो की संख्या नियत नही है।
5) शेषे यजुःशब्दः — ऋक् तथा साम से भिन्न मंत्रो का नाम यजुः है।

उपर्युक्त समस्त व्याख्याओं से यजुर्वेद का एक ही लक्षण मुख्यता प्रतिपादित होता है कि यज्ञक्रियाओं का सुचारु

रूप से सम्पादन करने के लिए गद्यात्मक मंत्रों का ही यजुर्वेद है। यह संहिता यज्ञ के 'अध्वर्यु' नामक पुरोहित के लिए है। अध्वर्यु से सम्पूर्ण यज्ञ की व्यवस्था एवं संचालन का सामर्थ्य अपेक्षित था और यह सामर्थ्य यजुर्वेद में निहित है।

किस यज्ञ में कौन से मन्त्रों का उच्चारण किस समय किया जाना चाहिए, यह सारी विधियाँ यजुर्वेद में उपलब्ध होती हैं। अध्वर्यु को उन समस्त विधियों का सम्पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि विभिन्न वेद एक-दूसरे के पूरक थे। ऋग्वेद ज्ञानपरक है और यजुर्वेद क्रियापरक है, तथा वैदिक यज्ञ की समस्त विधि का निष्पादन करता है।

पतञ्जलि ने महाभाष्य में यजुर्वेद की 101 शाखाओं का कथन किया है। किन्तु मुख्यतः यजुर्वेद के दो भिन्न सम्प्रदाय बने थे जिनसे परवर्ती युग में अनेक शाखाएँ प्रवर्तित हुई।

मुख्य दो सम्प्रदाय – ब्रह्म सम्प्रदाय एवं आदित्य सम्प्रदाय है जो लोक में मुख्यतः कृष्ण यजुर्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद नाम से प्रख्यात हैं –

"शुक्लं कृष्णमिति यजुश्च समुदाहृतम्।
शुक्लं वाजसनं ज्ञेयं कृष्णं तु तैत्तिरीयकम्॥"

इन दोनों सम्प्रदायों की संहिताओं में विषयानुक्रम तथा विषय सम्पादन एवं विवेचन की दृष्टि से ही अन्तर है। दोनो सम्प्रदायों को यह कृष्ण अथवा शुक्ल नाम क्यों प्राप्त हुए — इस सम्बन्ध में अनेक मत-मतान्तर उपलब्ध

होते हैं। वेद अपौरुषेय माने जाने के कारण प्राचीन भारतीय शास्त्रकारों अथवा विचारकों ने इस विवेचन को करना सम्भवत: उचित नहीं समझा। किन्तु आधुनिक युग में इस पर पर्याप्त विचार हुआ है।

यजुर्वेद के कृष्णत्व अथवा शुक्लत्व पर किया गया विवेचन संक्षिप्तया इस प्रकार है—

(1) पाश्चात्य विद्वानों ने कृष्ण-शुक्ल रूप इस भेद को अत्यन्त सामान्य रूप से निरूपित किया है। मैक्डॉनल के कथन में सभी पाश्चात्य विद्वानों के विचार समाहित से हो जाते हैं। तदनुसार—
"वाजसनेयी संहिता में केवल वे ही मंत्र एवं प्रयोग संकलित हैं जिनका यज्ञों में विनियोग विहित है, इसी कारण इसे शुक्ल अर्थात् विशुद्ध पाठ कहते हैं। वाजसनेयी संहिता के ब्राह्मण ग्रंथ (शतपथ ब्राह्मण) में प्रयोग विधि का विवरण पृथक रूप से दिया है। इसी विषय विभाग के कारण वाजसनेयी संहिता विशुद्ध अर्थात् असंकीर्ण अत एव 'शुक्ल' कही जाती है। दूसरी संहिता में दोनों प्रकार की बातें एकत्र संकलित हैं— इसी संकीर्ण रूप के कारण वह संहिता "कृष्ण" कही गई है।"

(2) डॉ० कुँवर लाल जैन ने इस विषय में एक भारतीय मत उद्धृत करके उसका खण्डन करते हुए अपना मत स्थापित किया है। तदनुसार—"इनके इस नामकरण का कारण एक विद्वान ने इस प्रकार बतलाया है—

"बुद्धिमालिन्यहेतुत्वाद्यजु: कृष्णमीर्यते।
व्यवस्थितप्रकरणाद्यजु: शुक्लमीर्यते॥"

'बुद्धि की मलिनता के कारण एक यजु: को कृष्ण कहते

और प्रकरणों के व्यवस्थित रूप से होने के कारण इसे को शुक्ल यजु: कहा जाता है।'

(ज) डॉ० मंगलदेव शास्त्री ने आर्य एवं आर्येतर विचारधारा के प्रभाव के रूप में शुक्ल और कृष्ण नामों की सङ्गति बिठाने का प्रयास किया है। उसके अनुसार कृष्ण यजुर्वेद का विस्तार एवं पठन-पाठन दक्षिण भारत में अधिक रहा, अत: उसपर वैदिकेतर विचार धारा का व्यापक प्रभाव पड़ा। शुक्ल यजुर्वेद का प्रसार उत्तर भारत में होने के कारण उसपर वैदिकेतर प्रभाव नहीं पड़ा। वह विशुद्ध वैदिक विचारधारा का पोषक बना रहा। इस प्रभाव के कारण ही सम्भवत: कृष्ण व शुक्ल नामो का प्रचलन हुआ।

• ब्रह्म सम्प्रदाय - इस सम्प्रदाय का प्रतिनिधि ग्रन्थ कृष्ण यजुर्वेद है। इसमें मंत्रो के साथ-साथ उनके व्याख्यात्मक तथा विनियोगात्मक ब्राम्हणों का भी सम्मिश्रण है। "चरण व्यूह" के अनुसार कृष्ण यजुर्वेद की 86 शाखाएँ थी किन्तु सम्प्रति इसकी चार ही शाखाएँ तथा उससे सम्बन्ध विविध ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।

1) तैत्तिरीय संहिता - यह कृष्ण यजुर्वेद की प्रधान शाखा है। काण्व संहिता के भाष्य की भूमिका में आचार्य सायण ने इस संहिता के नामकरण के विषय में एक आख्यान प्रस्तुत किया है। महर्षि "याज्ञवल्क्य" ने अपने गुरु "वैशम्पायन" से यजुर्वेद ग्रहण किया। किसी समय गुरु ने क्रोधित होकर ज्ञान को वापस मांगा, क्रोधित गुरु के शाप से भयभीत होकर याज्ञवल्क्य जी ने

स्वाधीत यजुषों का वमन कर दिया। गुरू वैशम्पायन की आज्ञा से उनके अन्य शिष्यों ने तितर का रूप धारण कर तुरन्त ही उन यजुषों का वरण / भक्षण कर लिया। इसी कारण इस संहिता का नाम तैत्तिरीय संहिता पड़ा। तैत्तिरीय संहिता का परिमाण पर्याप्त वृहत् है। इसमे 6 काण्ड, इन काण्डो मे 44 प्रपाठक एवं 631 अनुवाक है, इनमें पौरोडाश, याजमान, वाजपेय, होत्र, राजसूय आदि का विविध वर्णन है।

2) मैत्रायणी संहिता — यह मैत्रायणी शाखा की संहिता है तथा गद्य पद्यात्मक है। इसमें 4 काण्ड, 54 प्रपाठक, तथा 2144 मंत्र है जिनमे से 1701 मन्त्र ऋग्वेद से लिए गए है। इसको 'कालाप' अथवा 'कालापक' संहिता भी कहा जाता है।

3) कठ संहिता — यह काठक संहिता भी कहलाती है। इस संहिता मे 5 खण्ड, 40 स्थानक, 843 अनुवाक एवं 3091 मंत्र है। मन्त्रो तथा ब्राम्हणो की सम्मिलित संख्या 18000 है। आत्मतत्व विवेचन के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध कठोपनिषद इसी संहिता से सम्बन्द्ध है।

4) कपिष्ठल-कठ संहिता — इसका यह नामकरण कैसे हुआ— इस सम्बन्ध मे मतैक्य नहीं है। पाणिनि के "कपिष्ठलो गोत्रे" (8/3/91) सूत्र से स्पष्ट होता है कि कपिष्ठल एक महर्षि का नाम है। किन्तु कुछ विद्वान इसे स्थानविशेष का नाम मानते है। यह संहिता अपूर्ण ही उपलब्ध हुई। डॉ० रघुवीर ने 1932 मे इसे मेहरचन्द संस्कृत ग्रन्थमाला के अन्तर्गत लाहौर

Scanned with CamScanner